जवाहर लाल सजावल और अन्य।

बनाम

जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य

27 फरवरी, 2002

[एस. राजेंद्र बाबू और रूमा पाल, न्यायाधीश]

सेवा कानून:

जम्मू और कश्मीर सिविल सेवा विनियम, 1956:

अनुच्छेद 207 - कार्यक्षेत्र और व्याख्या।

राज्य सरकार - कर्मचारी - उनकी स्थिति, अधिकार और दायित्व - उसका निर्धारण और संशोधन।

जम्मू और कश्मीर राज्य - सरकारी कर्मचारी - राज्य की औद्योगिक इकाइयों में 1963 से पहले स्थायी नियुक्ति - एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी का निगमन - कंपनी को राज्य औद्योगिक इकाइयों का सौंपना - कर्मचारियों को कंपनी द्वारा बनाए गए नियमों के बावजूद सरकारी कर्मचारियों को भुगतान किए गए ग्रेड और डीए के संशोधन का लाभ दिया गया - राज्यपाल द्वारा पारित आदेश - कंपनी द्वारा पारित आदेशों के अनुसार - अपीलकर्ता को सरकारी कर्मचारियों के साथ सेवा शर्तों की समानता से इनकार - गैरकानूनी कहा गया - राज्यपाल द्वारा जारी निर्देशों के आधार पर सरकारी कर्मचारियों के पदों को समाप्त नहीं किया जा सकता है - अपीलकर्ता को राज्य सरकार के सेवक बने रहने के लिए कहा जाता है - तथ्यों के आधार पर अपीलकर्ताओं को विलंब का दोषी नहीं ठहराया जाता है।

1963 से पहले स्थायी सरकारी कर्मचारियों के रूप में नियुक्त अपीलकर्ता जम्मू और कश्मीर राज्य के वाणिज्य और उद्योग विभाग द्वारा संचालित औद्योगिक इकाइयों में

सेवारत थे। जम्मू और कश्मीर इंडस्ट्रीज लिमिटेड के निगमन के बाद, राज्यपाल ने 8 अक्टूबर, 1963 को एक आदेश जारी किया, जिसके तहत इन उपक्रमों को इस कंपनी को सौंपा गया था। इसे "सौंपने" के बाद भी अपीलकर्ताओं ने औद्योगिक उपक्रमों में काम करना जारी रखा, जिसमें उन्हें शुरू में नियुक्त किया गया था और अन्य सरकारी कर्मचारियों के रूप में परिलब्धियों, छुट्टी और पेंशन के संबंध में सेवा के समान लाभ का आनंद लेना जारी रखा। इसके अलावा, कंपनी द्वारा जम्मू और कश्मीर सिविल सेवा विनियम, 1956 के अधिनियमन के बावजूद, अपीलकर्ताओं को राज्य के अन्य सरकारी कर्मचारियों को भुगतान किए गए ग्रेड और महंगाई भत्ते के संशोधन का लाभ दिया गया था।

इसके बाद राजन समिति की अभिलेख के आधार पर, जिसने सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों के कर्मचारियों के वेतन सरंचना की जांच की, गवर्नर ने 26 अप्रैल, 1980 को एक आदेश जारी किया और इसके अनुसरण में कंपनी ने 8 मई, 1980 को दो आदेश जारी किए - एक जीवन यापन भत्ते की लागत से संबंधित और दूसरा मजदूरी के निर्धारण से संबंधित था। 10 नवंबर, 1980 के एक तीसरे आदेश में यह निर्धारित किया गया था कि कंपनी के नियमित कर्मचारियों की छुट्टी की अनुमति कारखाना अधिनियम के अनुसार दी जाएगी, न कि निगम के छुट्टी नियमों के अनुसार जो अतीत में उन पर लागू थे। चूंकि इन तीन आदेशों ने अपीलकर्ताओं को सरकारी कर्मचारियों के साथ सेवा शर्तों की समानता से इनकार कर दिया था, इसलिए उन्होंने इन आदेशों को चुनौती देते हुए इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की। इस न्यायालय ने निर्देश दिया कि उन्हें पहले उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए। उच्च न्यायालय के समक्ष उन्होंने यह निर्देश देने की मांग की कि उन्हें सेवा नियमों और विनियमों द्वारा शासित माना जाना चाहिए जो राज्य कर्मचारियों पर लागू होते हैं और उन्हें उसी वेतन, परिलब्धियों, डीए, छुट्टी आदि का हकदार माना जाना चाहिए, जो राज्य सरकार के अधीन सरकारी कर्मचारियों को उपलब्ध होगा। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उन्होंने जम्मू-कश्मीर सिविल सेवा विनियम, 1956 के अनुच्छेद 207 के तहत 1963 में स्वेच्छा से सरकारी कर्मचारी के रूप में अपना प्रास्थिति अभ्यपर्ण कर दिया था और किसी भी दशा में उनके दावे को देरी और लापरवाही से रोक दिया गया था।

न्यायालय ने, कर्मचारियों द्वारा दायर अपील को स्वीकार करते हुए और उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हुए कहा।

अभिनिर्धारित : 1. उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेशों को संवैधानिक रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है।

2. उच्च न्यायालय का निष्कर्ष कि अपीलकर्ताओं की स्थिति विनियमों के अनुच्छेद 207 के तहत निर्धारित की गई थी, एक गलत व्याख्या पर आधारित है।

अनुच्छेद 207 पेंशन प्रदान करने की शर्तों से संबंधित है। यह स्थिति निर्धारित करने का बिल्कुल भी इरादा नहीं करता है। चूंकि वास्तव में अनुच्छेद 207 के तहत सरकारी पदों का कोई उन्मूलन नहीं था, इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा किसी भी विकल्प का प्रयोग करने या उस अनुच्छेद के तहत अपनी स्थिति को अभ्यपर्ण करने का कोई सवाल ही नहीं था। इन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता की स्थिति का निर्धारण करने हेतु उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 207 पर निर्भरता पूर्णतः अनुचित थी। [74-डी ; 75-बी –सी]

3. किसी भी क़ानून या वैधानिक नियमों ने अपीलकर्ताओं द्वारा धारित स्थायी पदों को समाप्त नहीं किया। 8 अक्टूबर, 1963 का गवर्नर का आदेश कंपनी के संगम अनुच्छेद के 89 के तहत केवल एक निर्देश था, न कि एक सांविधिक आदेश। इस तरह के निर्देश से न तो सरकारी औद्योगिक उपक्रम और न ही इसके कर्मचारियों के पदों को समाप्त किया जा सकता है। उक्त आदेश वास्तव में कोई 'आदेश' नहीं था, बल्कि कंपनी के संस्था का अंतर्नियम के अनुच्छेद 89 के अंतर्गत एक 'निर्देश' था। इसका कोई वैधानिक बल नहीं था। न तो सरकारी औद्योगिक उपक्रम और न ही उसके कर्मचारियों के पद ऐसे किसी निर्देश द्वारा समाप्त किए जा सकते थे। राज्यपाल कंपनी के संस्था का अंतर्नियम के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार के अधीन औद्योगिक इकाइयों को समाप्त नहीं कर सकते थे और फिर उन उपक्रमों को कंपनी को हस्तांतरित नहीं कर सकते थे। यह राज्य सरकार द्वारा किसी समझौते या विधि के रूप में किसी भी हस्तांतरण साधन के निष्पादन के बिना कंपनी द्वारा औद्योगिक इकाइयों का एकतरफा अधिग्रहण माना जाएगा। वास्तव में विधि की दृष्टि से अपीलकर्ताओं द्वारा धारित पदों का कोई उन्मूलन नहीं हुआ था और न ही ऐसा कोई आशय था। [75-डी-एफ]

4. यदि अपीलकर्ताओं को कंपनी के कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया होता, तो उन्हें कंपनी द्वारा नियुक्ति पत्र जारी किए जाने चाहिए थे। कंपनी द्वारा किसी भी अपीलकर्ता को कोई नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया। इससे अपरिहार्य निष्कर्ष यह निकलता है कि अपीलकर्ता राज्य सरकार के सेवक थे और बने हुए हैं, तथा जम्मू और कश्मीर राज्य के स्थायी निवासी होने के नाते वे राज्य के संविधान की धारा 10 के तहत, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुरूप, अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान व्यवहार पाने के हकदार हैं। विवादित आदेशों द्वारा

राज्य सरकार ने अपीलकर्ताओं को ऐसी समानता से वंचित करने का प्रयास किया है। अतः इन आदेशों को संवैधानिक रूप से बरकरार नहीं रखा जा सकता हैं और तदनुसार इन्हे रद्द किया जाता है।

[75-G-H; 76-A)

रोशन लाल टंडन बनाम भारत संघ, **ए आई आर (1967) उच्चतम न्यायालय 1889, पुनः पुष्टि की गई।**

शेख गुलाम कादिर एवं अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य एवं अन्य, **ए आई आर (1970) जम्मू और कश्मीर 94, अनुमोदित।**

वरयाम चंद बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य, **(एस डब्लू पी संख्या. 549/83) जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा 29.6.1998 को निर्णयित, अस्वीकृत।**

गुलाम मोहम्मद एवं अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य एवं अन्य, **(रिट याचिका 107/1967) जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय द्वारा 24 जुलाई, 1972 को निर्णयित, संदर्भित।**

5. तथ्यों का विवरण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ताओं की ओर से वास्तव में कोई देरी या अतिविलंब नहीं थी। अपीलकर्ताओं को वास्तव में अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान ही माना गया था, जब तक कि 1980 वेज कमेटी रिपोर्ट के आधार पर विवादित आदेश जारी नहीं किए गए। इन्हें 1981 में इस न्यायालय के समक्ष और 1982 में उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं द्वारा चुनौती दी गई। यह तथ्य कि उच्च न्यायालय ने मामले का निपटारा करने में 16 वर्ष लगाए, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध नहीं जा सकता। देरी और अतिविलंब के आधार पर रिट याचिकाओं की खारिजी, इन परिस्थितियों में, अस्थिर है। [76-बी-डी]

सिविल अपीलीय अधिकार क्षेत्र : सिविल अपील संख्या 3079/2000

जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय के सेवा रिट याचिका संख्या 236/1982 में दिनांक 2.5.98 के निर्णय और आदेश से।

एम.एन. कृष्णमणि, ए.के. रैना, ए.के. कौल, एस. पानी और आर.डी. उपाध्याय अपीलकर्ताओं की ओर से।

अनिस सुहरावर्दी प्रतिवादियों की ओर से।

न्यायालय का निर्णय दिया गया

रूमा पाल, न्यायाधीश; इस अपील में अपीलकर्ताओं ने जम्मू और कश्मीर राज्य सरकार के कर्मचारियों के रूप में अपनी स्थिति स्थापित करने का प्रयास किया है, साथ ही अन्य राज्य कर्मचारियों को उपलब्ध समान अधिकार, विशेषाधिकार और लाभ प्राप्त करने की मांग की है। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के दावों को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि उन्होंने 1963 में जम्मू और कश्मीर सिविल सेवा विनियम, 1956 (जिसे आगे विनियम कहा गया है) के अनुच्छेद 207 के अंतर्गत स्वेच्छा से सरकारी सेवक के रूप में अपनी पद त्याग दी थी और किसी भी स्थिति में उनका दावा विलंब और लापरवाही के कारण बाधित था।

यह विवाद में नहीं है कि प्रत्येक अपीलकर्ता को 1963 से पहले जम्मू और कश्मीर सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, l956 (जिसे आगे 'नियम' कहा जाएगा) के तहत स्थायी सरकारी सेवकों के रूप में नियुक्त किया गया था और वे राज्य सरकार के वाणिज्य और उद्योग विभाग द्वारा संचालित औद्योगिक इकाइयों में विभिन्न पदों पर कार्यरत थे।

l963 में, राज्य सरकार ने दिनांक ।0 अगस्त ।963 के अपने आदेश संख्या 189/C of 1963 द्वारा इन औद्योगिक इकाइयों के प्रशासन के लिए एक निदेशक मंडल का गठन किया। निदेशक मंडल का गठन किया गया था द्वारा

(i)	प्रधानमंत्री -	अध्यक्ष
(ii)	श्री कमाई! सिंह, - माननीय, योजना और उद्योग के लिए सरकार के सलाहकार	उपाध्यक्ष
(iii)	श्री एस.एम. आगा, आईएएस -	प्रबंध निदेशक
(iv)	श्री अमर सिंह, आईएएस - उद्योग निदेशक	सदस्य (पदेन)
(v)	श्री एस.ए.एस. कादिर, आईएएस · सहकारिता रजिस्ट्रार	उपयुक्त

(vi) श्री गुलाम अहमद - उपयुक्त

वित्त नियंत्रक

आदेश में औद्योगिक उपक्रमों के प्रभारी अधिकारियों को संबंधित उपक्रमों में प्रबंधकों के रूप में पुनः नामित करने का भी प्रावधान किया गया था। सभी प्रबंधकों को प्रबंध निदेशक और निदेशक मंडल के समग्र नियंत्रण के अधीन रखा गया था।

3 अक्टूबर 1963 को, जम्मू और कश्मीर इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड, जो कि यहाँ प्रतिवादी संख्या 2 है (आगे इसे कंपनी कहा जाएगा), कंपनी अधिनियम, 1977 के प्रावधानों के तहत एक निजी लिमिटेड कंपनी के रूप में स्थापित की गई थी। कंपनी का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि इसके संस्थापन प्रलेख के खंड III (अ) में उल्लेखित है, यह था:

> "राज्य के औद्योगिक उपक्रमों का संचालन, प्रबंधन और प्रशासन करना, जिन्हें राज्यपाल द्वारा अधिसूचित किया जा सकता है, इस प्रकार कि उनका आर्थिक संचालन सुनिश्चित हो सके।"

8 अक्टूबर 1963 को, राज्यपाल ने निर्देश जारी किए जिनके द्वारा राज्य सरकार के कुछ औद्योगिक उपक्रम, जिनमें वे तीन भी शामिल थे जिनमें अपीलकर्ताओं की नियुक्ति हुई थी, "कंपनी के संस्थापन प्रलेख के खंड III (अ) के अनुसार कंपनी को सौंपे जाने हेतु अधिसूचित किए गए"। इन औद्योगिक उपक्रमों के कंपनी को इस 'सौंपे जाने' के प्रभाव पर तथ्यों के वर्णन को पूरा करने के बाद चर्चा की जाएगी~ इस चरण पर केवल इतना टिप्पणी करना आवश्यक है कि इस "सौंपे जाने" के बाद भी अपीलकर्ता उन्हीं औद्योगिक उपक्रमों में काम करते रहे जिनमें उनकी प्रारंभिक नियुक्ति हुई थी और वे सेवा के वही लाभ प्राप्त करते रहे

वेतन, अवकाश और पेंशन के संबंध में अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान।

1966 में, राज्यपाल द्वारा एक अधिसूचना जारी की गई जिसमें नोट 6 प्रस्तुत किया गया, जिसने नियम 52 में संशोधन किया और यह प्रावधान करने का प्रयास किया कि अब से पूर्ववर्ती रेशम उत्पादन विभाग के वे कर्मचारी, जो सरकारी सेवकों के रूप में पेंशन और अन्य लाभों के अधिकारी थे, उन्हें कंपनी के कर्मचारियों के रूप में माना जाएगा।

इसे 1968 में रेशम पालन विभाग के कुछ कर्मचारियों द्वारा चुनौती दी गई थी, जिन्हें, यहाँ के अपीलकर्ताओं की तरह, राज्य सरकार के अधीन औद्योगिक इकाइयों में कंपनी के गठन से पहले स्थायी रूप से नियुक्त किया गया था।

उस मामले में याचिकाकर्ताओं का मुख्य तर्क यह था कि उनकी सेवाएँ केवल कंपनी को सौंपी गई थीं और वे अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान ही अपनी स्थिति का आनंद लेते रहे। इस चुनौती को जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा शेख गुलाम क़ादिर और अन्य बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य में स्वीकार किया गया। यह माना गया कि "किसी सरकारी कर्मचारी की सेवा की शर्तों को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता, सिवाय जम्मू और कश्मीर संविधान के अनुच्छेद 126 के तहत और उसके अनुसार, और न ही उसकी सेवा की प्रवृत्ति को एक रूप से दूसरे रूप में इस प्रकार परिवर्तित किया जा सकता है कि सेवा के स्वभाव का पूर्ण रूप से परिवर्तन हो जाए।" यह कहा गया:

"वर्तमान मामले में यदि याचिकाकर्ताओं को कंपनी के कर्मचारी माना जाता है, तो उनकी सेवा का स्वभाव और प्रवृत्ति पूरी तरह से बदल जाती है और वे राज्य संविधान की धारा 126 द्वारा प्रदान की गई प्रतिरक्षा और सुरक्षा का आनंद लेना बंद कर देंगे; और यदि कोई सरकारी कर्मचारी, जो धारा 126 के तहत सुरक्षा का हकदार है, अचानक बिना किसी सूचना के इस सुरक्षा से वंचित कर दिया जाता है, तो ऐसी कार्रवाई को उसके सेवा की समाप्ति या पदावनति (रैंक में कमी) के रूप में ही माना जाएगा।"

अदालत ने विनियमों के अनुच्छेद 207 के आधार पर प्रतिवादियों के तर्कों को भी अस्वीकार कर दिया, जिसमें कहा गया था कि कंपनी के गठन के परिणामस्वरूप रेशम विभाग को समाप्त कर दिया गया था और सरकारी कर्मचारियों की सेवाओं को कंपनी में स्थानांतरित कर दिया गया था। अदालत ने पाया कि अभिलेख में यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था कि याचिकाकर्ताओं को वास्तव में सरकारी सेवा से मुक्त किया गया था, न ही इस संबंध में उन्हें कोई सूचना दी गई थी और न ही उन्हें मुआवजा लेने या कंपनी के अंतर्गत नियुक्त होने का विकल्प दिया गया था। विनियमों के अनुच्छेद 207 के अंतर्गत प्रक्रिया का पालन न किए जाने के कारण, विवादित अधिसूचना को बरकरार नहीं रखा जा सका। तदनुसार संशोधन नोट को निरस्त कर दिया गया और एक रिट जारी किया गया।

परमादेश जारी किया गया जिसमें प्रतिवादियों को निर्देश दिया गया कि वे याचिकाकर्ताओं को उसी स्थिति में रखें जिसमें वे विवादित संशोधन किए जाने से पहले थे। उच्च न्यायालय का निर्णय 1969 में दिया गया था।

24 जुलाई 1972 को, सरकारी रेशम बुनाई कारखाने के कुछ अन्य कर्मचारियों द्वारा दायर दूसरी रिट याचिका: गुलाम मोहम्मद एवं अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य एवं अन्य, (डब्ल्यू.पी 107/1967), जिसमें यह घोषणा मांगी गई थी कि याचिकाकर्ता सरकारी सेवक बने रहे, को गुलाम कादिर के मामले में पहले के निर्णय का कोई उल्लेख किए बिना निम्नलिखित शब्दों में निपटाया गया:

" अब यह भली-भांति स्थापित है कि केवल घोषणा के लिए रिट जारी नहीं की जाती। यह भी अच्छी तरह स्थापित है कि जब तक कोई मांग और उसका अस्वीकार न हो, तब तक रिट जारी करने के लिए याचिका विचारणीय नहीं होती।

वर्तमान मामले में ऐसा कोई आरोप नहीं है कि याचिकाकर्ता को उपलब्ध किसी अधिकार की मांग को राज्य द्वारा अस्वीकार किया गया है।

चूंकि याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त नहीं हुआ है और राज्य द्वारा उसे सरकारी कर्मचारी मानने से इंकार करने की स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है, इसलिए वर्तमान याचिका, हमारे विचार में, समय से पूर्व है। अतः इसे खारिज किया जाता है।

यह, हालांकि, याचिकाकर्ता को बाद के चरण में सरकार द्वारा उसके दावे के अधिकार को अस्वीकार किए जाने की स्थिति में उपयुक्त उपाय तलाशने से वंचित नहीं करेगा।"

इस बीच कंपनी ने अपने स्वयं के सेवा नियम बनाए, जिन्हें जम्मू और कश्मीर उद्धोग सेवा विनियम' (आगे चलकर उद्धोग विनियम कहा गया)। फिर भी अपीलकर्ताओं ने अन्य समान रूप से स्थित कर्मचारियों के साथ मिलकर ग्रेड के संशोधन और महंगाई भत्ते के लाभ प्राप्त करना जारी रखा, जो राज्य के अन्य सरकारी कर्मचारियों को दिए जाते थे। इस प्रकार, जब सरकारी कर्मचारियों के वेतनमान का संशोधन 1973 की चैटर्जी वेज कमेटी रिपोर्ट के आधार पर किया गया, तो अपीलकर्ताओं के वेतन भी संशोधित किए गए। अपीलकर्ताओं को सिविल सेवकों के समान महंगाई भत्ता देने से इंकार करने का एक प्रयास तब विफल हो गया जब 1974 में उन्हें अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान दरों पर महंगाई भत्ता देने के निर्देश जारी किए गए। यह स्थिति 1979 तक जारी रही।

1979 में राज्य सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र की निगमों के कर्मचारियों की वेतन संरचना की जांच के लिए एक अन्य समिति गठित की। समिति जो राजन समिति के नाम से जानी गई, ने 1980 में अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट को 22 अप्रैल, 1980 को मंत्रिमंडल के निर्णय द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस मंत्रिमंडलीय निर्णय के आधार पर राज्यपाल ने 26 अप्रैल, 1980 को

एक आदेश जारी किया, जिसके अनुसरण में कंपनी ने 8 मई, 1980 को दो आदेश जारी किए—एक जीवनयापन भत्ते से संबंधित और दूसरा वेतन निर्धारण से संबंधित। एक तीसरा आदेश कंपनी द्वारा 10 नवंबर, 1980 को जारी किया गया, जिसमें यह निर्धारित करने का प्रयास किया गया कि कंपनी के नियमित कर्मचारियों की छुट्टियां "कारखाना अधिनियम के अनुसार दी जाएंगी, न कि निगम के अवकाश नियमों के अनुसार, जो पहले उन पर लागू थे"। इन तीनों आदेशों ने प्रभावतः अपीलकर्ताओं जैसे कर्मचारियों को सरकारी कर्मचारियों के साथ सेवा शर्तों की समानता से वंचित कर दिया।

1981 में अपीलकर्ताओं ने दिनांक 8 मई, 1980 और 10 नवंबर, 1980 के आदेशों को इस न्यायालय के समक्ष संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत चुनौती दी। अपीलकर्ताओं के अनुसार, जब 22 मार्च, 1982 को मामले की सुनवाई हुई, तो इस न्यायालय का विचार था कि अपीलकर्ताओं को पहले उच्च न्यायालय का रुख करना चाहिए। अतः अपीलकर्ताओं ने अनुच्छेद 32 के तहत दायर रिट याचिका वापस ले ली और तुरंत उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत एक रिट याचिका (एस. डब्लू.पी 236/82) दायर की, जिसमें राज्यपाल के दिनांक 26.4.1980 के आदेश के साथ-साथ दिनांक 8.5.80 और 10.11.80 के आदेशों को चुनौती दी गई और प्रतिवादियों के विरुद्ध निम्नलिखित निर्देश की मांग की गई:

> " .... याचिकाकर्ताओं को सरकारी कर्मचारी के रूप में माना जाए और यह माना जाए कि याचिकाकर्ता तथा उनके सह-कर्मचारी सेवा नियमों और विनियमों के अधीन हैं, जो राज्य के कर्मचारियों पर लागू होते हैं, तथा याचिकाकर्ताओं को वही वेतन, भत्ते, डी.ए., अवकाश आदि प्राप्त करने का अधिकार हो जो राज्य सरकार के अधीन सरकारी सेवकों को उपलब्ध होते हैं"

कुछ अन्य कर्मचारी, जो हमारे समक्ष अपीलकर्ता नहीं हैं, ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक समान रिट याचिका (एस. डब्लू.पी. संख्या 287/82) दायर की। कर्मचारियों के एक तीसरे समूह ने भी एक रिट याचिका दायर की: *वार्यम चंद बनाम जम्मू और कश्मीर राज्य,* (एस. डब्लू.पी. संख्या.549/83), जिसमें वही मुद्दे उठाए गए।

वार्यम चंद (एस. डब्लू.पी. संख्या 549/83) का मामला अलग से सूचीबद्ध किया गया और 29.6.88 को एक एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया। अन्य दो रिट याचिकाएं (एस. डब्लू.पी. संख्या 236/82 और एस. डब्लू.पी. संख्या

287/82) एक अन्य माननीय न्यायाधीश के समक्ष रखी गईं, जिन्होंने इस मुद्दे को एक बड़ी पीठ द्वारा विचार के लिए संदर्भित किया। 1998 में, खंड पीठ ने दोनों रिट याचिकाओं को उस आदेश द्वारा खारिज कर दिया, जिसे हमारे समक्ष चुनौती दी गई है।

विवादित निर्णय सीधे तौर पर एच के पूर्व निर्णय के साथ टकराव में है उसी उच्च न्यायालय के गुलाम कादिर के मामले (उपर्युक्त) में, जो अपीलकर्ताओं जैसे सरकारी कर्मचारियों की स्थिति के मुद्दे से संबंधित था। गुलाम कादिर के मामले में दिया गया निर्णय आज तक राज्य के प्रतिवादियों द्वारा चुनौती नहीं दिया गया है और यह न्यायालय पर बाध्यकारी था। किसी भिन्न विशेषता के अभाव में इसका पालन किया जाना चाहिए था। इसका उल्लेख तक नहीं किया गया। हम केवल इस संक्षिप्त आधार पर हमारे समक्ष अपील को स्वीकार कर सकते थे, लेकिन चूँकि उठाया गया मुद्दा बड़ी संख्या में कर्मचारियों को प्रभावित करता है, इसलिए इस मुद्दे का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करना आवश्यक है।

गुण-दोष के आधार पर हम इस न्यायालय द्वारा *रोशन लाल टंडन बनाम भारत संघ* के मामले में स्थापित विधि के कथन की पुनः पुष्टि करते हुए प्रारंभ कर सकते हैं कि:

> "एक बार अपने पद या कार्यालय पर नियुक्त होने के बाद, सरकारी सेवक एक पद प्राप्त कर लेता है और उसके अधिकार एवं दायित्व अब दोनों पक्षों की सहमति से नहीं, बल्कि विधि या वैधानिक नियमों द्वारा निर्धारित होते हैं, जिन्हें सरकार द्वारा एकतरफा रूप से बनाया और बदला जा सकता है।"

हमारे ध्यान में ऐसा कोई अधिनियम या वैधानिक नियम नहीं लाया गया है जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं द्वारा धारित स्थायी पदों को समाप्त किया गया हो। उच्च न्यायालय ने माना कि अपीलकर्ता की स्थिति विनियमों के अनुच्छेद 207 के अंतर्गत निर्धारित की गई थी .. यह निष्कर्ष अनुच्छेद की गलत व्याख्या पर आधारित है। प्रारंभ में ही उच्च न्यायालय ने विनियमों के अनुच्छेद 1-(a) की उपेक्षा की, जो यह स्पष्ट करता है कि

> "विनियम इस उद्देश्य से बनाए गए हैं कि यह निर्धारित किया जा सके कि नागरिक विभागों में सेवा के माध्यम से वेतन, अवकाश, पेंशन, यात्रा या अन्य भत्ते किन परिस्थितियों में अर्जित किए जाते हैं और उनकी गणना किस प्रकार की जाती है। ये भर्ती, पदोन्नति, आधिकारिक कर्तव्यों, अनुशासन या इसी प्रकार

> के अन्य विषयों से सीधे तौर पर नहीं, बल्कि केवल परोक्ष और आकस्मिक रूप से संबंधित हैं।" (जोर दिया गया)

अनुच्छेद 207 विनियमों के अध्याय XVII में निहित है, जो पेंशन प्रदान किए जाने की शर्तों से संबंधित है। इसी संदर्भ में यह अनुच्छेद बनाया गया था। यह पेंशन और उसकी गणना से संबंधित है। यह किसी भी प्रकार से स्थिति निर्धारित करने का दावा नहीं करता। इसमें लिखा है:

> "207 यदि किसी अधिकारी को उसके स्थायी पद के उन्मूलन के कारण सेवा से मुक्त करने के लिए चुना जाता है, तो जब तक कि उसे किसी अन्य पद पर नियुक्त नहीं किया जाता, जिसकी शर्तें उसके अपने पद की शर्तों के कम से कम बराबर मानी जाती हों, उसे यह विकल्प होगा
>
> (अ) किसी भी प्रतिकर पेंशन या अनुग्रह राशि (ग्रेच्युटी) को लेने का, जिसका वह उस सेवा के लिए हकदार हो सकता है जो उसने प्रदान की है; या
>
> (ब) ऐसे वेतन पर किसी अन्य नियुक्ति को स्वीकार करने का जैसा प्रस्तावित किया जाए और पेंशन के लिए अपनी पूर्व सेवा को गिनना जारी रखने का।"

यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद स्वयं न तो किसी स्थायी पद के उन्मूलन की प्रक्रिया का प्रावधान करता है, न ही किसी अन्य पद पर नियुक्ति के तरीके का, और न ही उस प्रकार का जिसमें कर्मचारी को विकल्प का उपयोग करना होता है। यह केवल उस स्थिति के परिणामों का प्रावधान करता है जब कोई स्थायी पद समाप्त किया जाता है, जिसका परिणाम यह होता है कि कर्मचारी के पास किसी अन्य नियुक्ति को स्वीकार करने का विकल्प होगा, और उस स्थिति में वह पेंशन के लिए पात्रता अवधि की गणना के उद्देश्य से अपनी पूर्व सेवा को जोड़ सकता है। चूंकि वास्तव में अनुच्छेद 207 के तहत सरकारी पदों का कोई उन्मूलन नहीं हुआ था, इसलिए अपीलकर्ताओं द्वारा किसी विकल्प का प्रयोग करने या उस अनुच्छेद के तहत अपनी स्थिति छोड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस परिस्थिति में अपीलकर्ताओं की स्थिति का निर्णय करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 207 पर किया गया निर्भरता पूर्णतः अनुचित था।

उच्च न्यायालय ने एक त्रुटिपूर्ण धारणा पर भी आगे बढ़ते हुए यह माना कि “8 अक्टूबर 1963 के आदेश के परिणामस्वरूप कंपनी के गठन के साथ ही सभी सरकारी औद्योगिक उपक्रम समाप्त हो गए थे।” प्रथम, जिसे उच्च न्यायालय ने ‘आदेश’ कहा है, वह वास्तव में कोई “आदेश” नहीं था, बल्कि कंपनी के अनुच्छेद संघ के अनुच्छेद 89 के अंतर्गत एक “निर्देश” था। उसका कोई वैधानिक बल नहीं था। न

तो सरकारी औद्योगिक उपक्रम और न ही उसके कर्मचारियों के पद ऐसे किसी निर्देश द्वारा समाप्त किए जा सकते थे। राज्यपाल, कंपनी के अनुच्छेद संघ के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्य सरकार के स्वामित्व वाले औद्योगिक इकाइयों को समाप्त कर उन्हें कंपनी को हस्तांतरित नहीं कर सकते थे। यह राज्य सरकार द्वारा किसी समझौते या विधि के रूप में किसी हस्तांतरण साधन के निष्पादन के बिना कंपनी द्वारा औद्योगिक इकाइयों का एकतरफा अधिग्रहण माना जाएगा। वास्तव में और विधि की दृष्टि से अपीलकर्ताओं द्वारा धारण किए गए पदों का कोई उन्मूलन नहीं हुआ था और न ही ऐसा कोई अभिप्राय था।

निर्देशों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे किसी भी तरह से अपीलकर्ताओं द्वारा धारण किए गए पदों को समाप्त करने के आदेश के रूप में समझा जा सके। यदि अपीलकर्ताओं को कंपनी के कर्मचारियों के रूप में नियुक्त किया गया होता, तो उन्हें कंपनी द्वारा नियुक्ति पत्र जारी किए जाने चाहिए थे। कंपनी द्वारा किसी भी अपीलकर्ता को कोई नियुक्ति पत्र जारी नहीं किया गया। अनिवार्य निष्कर्ष यह है कि अपीलकर्ता राज्य सरकार के कर्मचारी थे और बने हुए हैं तथा जम्मू और कश्मीर राज्य के स्थायी निवासी होने के नाते वे राज्य के संविधान की धारा 10 के अंतर्गत अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान व्यवहार पाने के हकदार हैं, जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुरूप है।

विवादित आदेशों के माध्यम से राज्य सरकार ने अपीलकर्ताओं को इस समानता से वंचित करने का प्रयास किया है। अतः ये विवादित आदेश संवैधानिक रूप से टिक नहीं सकते और परिणामस्वरूप निरस्त किए जाने चाहिए।

लेकिन क्या उच्च न्यायालय द्वारा देरी और अति विलंब के निष्कर्ष के कारण अपीलकर्ताओं को उनके राहत के अधिकार से वंचित कर दिया जाना चाहिए? हम ऐसा नहीं मानते। तथ्यों का वर्णन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वास्तव में अपीलकर्ताओं की ओर से कोई देरी या अति विलंब नहीं थी। कम से कम 1972 तक, उच्च न्यायालय ने *गुलाम मोहम्मद* के मामले (उपर्युक्त) में पाया कि राज्य ने स्थिति की समानता से इनकार नहीं किया था और कर्मचारियों के किसी भी स्तिथि से इनकार को चुनौती देने का अधिकार दिया गया था जब और यदि ऐसा हुआ। अपीलकर्ताओं को वास्तव में 1980 की वेतन समिति की रिपोर्ट के आधार पर विवादित आदेश जारी होने तक अन्य सरकारी कर्मचारियों के समान माना गया था। इन आदेशों को 1981 में इस न्यायालय के समक्ष और 1982 में उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं द्वारा चुनौती दी गई। यह तथ्य कि उच्च न्यायालय ने मामले के निपटारे में 16 वर्ष लगा दिए, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध नहीं जा सकता। इन परिस्थितियों में देरी और अति विलंब के आधार पर रिट याचिकाओं की खारिजी अवहनीय है।

अतः उच्च न्यायालय के निर्णय को निरस्त किया जाता है और अपील को स्वीकार करते हुए अपीलकर्ताओं को उनकी रिट याचिका में मांगी गई राहत प्रदान की जाती है। लागत प्रतिवादी-राज्य द्वारा अपीलकर्ताओं को संयुक्त रूप से दी जाएगी, जो ₹15000 (केवल पंद्रह हजार रुपये) निर्धारित की गई है।

टी.एन.ए. अपील स्वीकृत।

यह अनुवाद (तलत परवीन) पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया ।